SKC
Sanskrit
181.482
PUR

PURKAISTHEN ACHETAMRITSAR (SANS) IGNCA

अद्वैतामृतसारः

(शंकरवेदान्तस्य सिद्धान्तसारः)

To Prof. Dr. Suniti Kumar Chatterjee
M.A., D. Litt. etc.
with the best compliments &
the humble author
20/12/54.

For kind Review
Dr. L. Shrimali
21.12.54

म० ए० काव्यतीर्थेत्युपाधिधारिणाऽध्यापकेन
श्रीमद् द्विजेन्द्रलाल-शर्म-पुरकायस्थेन
विरचितः

जयपुरतः

मूल्यम्
सपादम् एकरूप्यकम् १।)

प्राप्ति स्थानम्—
भारती भवन
गोपालजी का रास्ता, जयपुर

SKU
SANS
181.482
PUR
S-8066
Deptt. of Arts

सर्वं स्वत्वं ग्रन्थकारेण संरक्षितम्

SV 05

मुद्रक
राजस्थान प्रिंटिङ्ग वर्क
जयपुर

PREFACE

With an honest intention of rendering in an easy and brief form, the Advait Vedantic Philosophy of Shankara, I set my hand to the present work. The text is written in simple Sanskrit verse with English and Hindi Translations attached thereto for the convenience of the common readers. Here I have tried to put all the leading doctrines developing the Vedantic system of Shankara, discarding the controversial elements and refutational arguments involved therein. Only the positive and constructive side of that Philosophy has been presented in unambiguous terms.

Being fully conscious of my imperfections I venture to place it as my first attempt, before the learned scholars and interested readers for their encouraging to learance and liberal consideration. In spite of my best efforts there remain a few minor printing mistakes and other irregularities at some places of the book which may kindly be reported to me by the readers for future revision.

The book, I believe, may be taken as helpful and serviceable for the purpose at hand. My efforts will be amply rewarded if the book attracts a sympathetic attention of the persons interested in the subject and gets its due reception in their hands.

I should gratefully mention the names of Pt. Jay Kumar Tarka-Vedanta-Sad-Darshan-Tirtha of sylhet one

of my teachers of Nyaya and Vedant and Pt. Pattabhi Ram Shastri Vidyasagar Ex-Principal Maharaja's Sanskrit College, Jaipur and my University Professor Shree H. D. Bhattacharyya M.A., B.L., P, R. S, Darshan-Sagar of Calcutta for their kind suggestion and encouragement in the undertaking. I should express my gratitude to the great Sanskrit Scholar Maha Mahopadhyaya Pt. Giridhar Sharma Chaturvedi Head of the Research Deptt. Hindu University Banaras for his commendable appreciations on it in encouragent for further such works. Thanks are due to some local Sanskrit Scholars, some of my colleagues and students who have rendered their encouragement and help in the completion of the book in the present form.

I acknowledge my indebtedness to the University of Rajputana for the Grant-in-aid received by me from the University towards the cost of the publication of the book.

JAIPUR
The 16th June, 1954. } *D. L. Sharma Purkayastha*

❀ मंगलाचरणम् ❀

नमामि विघ्ननाशाय गणेशशंकरीशिवान् ।
शुभसाफल्यभाग्यार्थं श्रीवाणी–परमात्मनः ॥ १ ॥

आचार्यान् शिक्षकान् देवान् पितरौ नौमि भक्तिमान् ।
मायामृत्युनिरासाय मुमुक्षुर्ब्रह्मसेविता ॥ २ ॥

व्यासं वेदान्तकर्त्तारं ज्ञानिनं ज्ञानसंश्रयम् ।
भागवतं हरिं वन्दे निखिल–लोकपालकम् ॥ ३ ॥

हरिदासाश्रिते धेहि सुशीलत्वं वचःप्रभाम् ।
जीवनजयबोधेभ्यः सत्यज्ञानमुदो नयम् ॥ ४ ॥

अथ शंकरमाश्रित्य बोधाय मन्दमेधसाम् ।
अद्वैतामृतसारोऽयं संक्षेपं तन्यते मया ॥ ५ ॥

[श्रीहट्ट–सूर्यवासस्थ–दुलालानन्दजेन हि ।
धीरेन्द्रावरजेनैव द्विजेन्द्रलाल–शर्मणा] ॥ ६ ॥

॥ ॐ तत् सत् ॐ ॥

'अद्वैतामृतसारः'

ग्रन्थारम्भः

प्रथमः सर्गभागः

अनन्तरं कस्य कुतश्च कारणात्
प्रयोजनं ब्रह्मविवेदहेतु किम् ।
प्रमाणतच्चश्च फलन्तु किंविधं
विमुक्तिरूपं भवबन्धनाशि किम् ॥ १ ॥

What course of conduct precedes the search for Brahman? In what condition and for what purpose does it (the search) arise? What are the ways and kinds of knowledge and their achievements? And what is the nature of salvation that may put an end to all worldly sufferings? (1)

ब्रह्म-जिज्ञासा से पहले क्या आचरण करना चाहिए? वह जिज्ञासा कैसे उत्पन्न होती है? ब्रह्म-विद्या से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है? उसके (ब्रह्म-विद्या के) कितने प्रमाण हैं और उन प्रमाणों के तत्त्व व फल क्या हैं? भव-बन्धनों के नाशक मोक्ष का क्या स्वरूप है? (१)

शमादिसिद्धिं फलभोगवर्जनम्
अनित्यनित्यप्रविवेकचिन्तनम् ।
हृदा निधायेष्टिकृतेरसारतां
मुमुक्षुताञ्चैव नरो विधारयेत् ॥ २ ॥

A man desirous of the undertaking should develop in himself the virtues of tranquillity and restraint etc., practise the complete renunciation of enjoying all consequences of his conduct (earthly or heavenly), cultivate an unfailing insight into the distinction between real and unreal ; and keeping firmly in mind the futility of sacrificial rites he should develop a keen desire for salvation. (2)

जिज्ञासु व्यक्ति को शमदमादि की सिद्धि प्राप्त करके, ऐहिक व पारलौकिक सुख भोगों का पूर्णतया वर्जन करके नित्य व अनित्य वस्तुओं का स्पष्ट रूप से भेद-ज्ञान अधिकृत करके, हृदय से यज्ञादि कर्मों की असारता समझकर तीव्र मोक्ष-कामना को अन्तर में स्थायीभाव से धारण करना चाहिए। (२)

अशेषदुःखाश्रयमत्र जीवनं
कथं तराम्येव भवेद्विचारणा ।
स्वरूपतः का भवसारवस्तुता
किमात्मतत्त्वं भवतीति संशयः ॥ ३ ॥

The problem how to overcome the miseries and sufferings of the earthly life and the doubt regarding the reality of the objects of experience and the true nature of the self, (naturally) may move a man to pursue the investigation. (3)

सांसारिक जीवन अशेष दुःखों से पूर्ण है। अतः उन दुःखों से परित्राण कैसे पाया जाए, यह विचार उत्पन्न होता है। स्वरूपतः संसार की सत्ता क्या है और आत्मा का यथार्थ तत्त्व क्या है, इस प्रकार के प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं। (३)

अतःपरं वै न पुनस्तु चान्यथा
प्रजायते ब्रह्मविदे समेषणा ।
जितो हि लोको यजनैर्क्रियाशतै-
रशाश्वतो मोक्षफलं न लभ्यते ॥ ४ ॥

Only then (i.e. after a man is trained on the above line and not otherwise) there arises the earnest desire for the knowledge of Brahman; because the places and states won by hundreds of sacrificial performances are impermanent and never leading him to the imperishable state of final emancipation. (4)

उपर्युक्त विचार के बाद ही ब्रह्म-जिज्ञासा उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं, कारण कि सैकड़ों याग-यज्ञों से जो स्वर्गादि सुख के लोक प्राप्त होते हैं वे सभी अनित्य होते हैं। उनसे परम मोक्षफल प्राप्त नहीं होता। (४)

समस्तशास्त्रन्त्वपि भेदमूलकं
प्रमातृ-मेय-प्रमिते र्विचारणात् ।
समं हि वृत्तं श्रुतिलोकसम्मतं
तदेव चाध्याससमाश्रितं ध्रुवम् ॥ ५ ॥

All the *Shastras* (studies) are based on distinctions of subject, object and their relations. It is true that acts both social and religious performed by men are equally dependent on and an outcome of *Adhyasa* (ignorance). (5)

समस्त शास्त्र केवल भेद-मूलक ही हैं। उनमें प्रमाता, प्रमेय और प्रमिति इन विभिन्न पदार्थों का विवेक अवश्य ही रहता है। अतः यह निश्चित है कि लौकिक तथा वैदिक समस्त अनुष्ठान अध्यास द्वारा आश्रित हैं। (५)

उपासकोपास्यविभेद्युपासनं
प्रमाणमेयादिविवेकसंश्रितम् ।
समस्तवृत्तं भुवि चेष्टितं यद्
अतात्त्विकाध्यासविमोहनं हि तत् ॥ ६ ॥

Worship maintains the distinction between the worshipper and the worshipped. The means and objects of knowing also are dependent on the discrimination. All the undertakings are really the outcome of the unreal superimposing habit of the mind. (6).

उपासक व उपास्य का सम्बन्ध भेदाधारित हैं। प्रमाण व प्रमेयादि भी विवेकाश्रित हैं। समस्त आचरण तथा अनुष्ठान (व्यावहारिक कर्म) केवल अतात्त्विक (असत्य) तथा अध्यास-रूप मोह से ही उत्पन्न होते हैं। (६)

न वैदिकं लौकिकमेव संकृतं
प्रभेदमाश्रित्य भवेत्तु सार्थकम् ।
यथा यथा ज्ञानमनात्मभासनं
तथाह्यविद्या प्रविभाति मोहिका ॥ ७ ॥

Neither the worldly acts nor the religious and sacrificial rites involving the distinction are effective (towards the attainment of salvation). Whenever any knowledge gets us an impression of notself, it is the Ignorance that expresses itself therein to blind us from the true sight of the Real. (7).

अतः न लौकिक और न वैदिक कर्म ही भेदाश्रित रहते हुए यथार्थतः सार्थक होते हैं। जितने प्रकार के अनात्मभासक ज्ञान होते हैं वे सभी मोहकरी अविद्या के स्फुरण हैं। (७)

क्रिया तु भेदाश्रयवृत्तिरूपका
प्रयोगहेतुः किल बन्धभाजनम् ।
अभेदतत्त्वेऽधिगते हि केवलं
न कर्मबन्धोऽपि पुनः प्रवर्तते ॥ ८ ॥

Performance of any sort is, by nature, grounded on a distinction implying an irreconcilable duality; and as a condition of worldly behaviour it binds the doer to the earth. Only when the (transcendental) unity in the form of an all-pervading Reality without a second is realised, the bonds of *karma* (acts) become ineffective (i.e. broken for good). (8)

स्वभावतः समस्त कर्म केवल भेदाश्रित हैं। भेद ही समस्त लौकिक व्यवहारों का आधार बनकर मनुष्यों के बन्धन का कारण होता है। अभेद तत्त्व के स्वरूप-ज्ञान के उपरान्त ही कर्म-बन्धन निवृत्त होते हैं और उनका पुनरावर्त्तन नहीं हो पाता। (८)

अखण्ड चिन्मात्ररसैकसच्चकं
सदेकनित्यं भयलेशनाशकम् ।
निषेवमानः परमार्थ-विद्यया
ह्यतीत्य मृत्युं त्वमृतं समश्नुते ॥ ६ ॥

The person engaged in realising through the higher form of knowledge the immntable one— the source of fearlessness, the eternal, everflowing, pure and indivisible (partless) conscious entity, transcends death and enjoys immortality. (9)

आनन्दरूप, सनातन, भयलेशनाशक तथा अखण्ड चिन्मात्र एक सत्तायुक्त (परम पदार्थ ब्रह्म) की पारमार्थिक विद्या की सहायता से सेवा करता हुआ जीव मृत्यु का अतिक्रमण करके अमृतत्व का लाभ करता है । (६)

प्रमोक्षकार्यावगतिः परात्मनो
विनाश्यमायां बहुरूपकारणम् ।
पराविवेदप्रतिबाध्यसंविदम्
अनाद्यविद्यां विहिनस्ति सर्वथा ॥ १० ॥

The knowledge of the universal self (i. e. the ultimate Reality) brings about the final emancipation after it totally destroys 'Maya' (the cosmic nescience), the root cause of the multiplicity of names and forms (prevailing in the world). (10)

परमात्मा की सम्यग् अवगति ही मुक्तिफल है । वह बहुविध रूपों के कारण माया का विनाश करके पराविद्या से नष्ट होने वाली भ्रान्त प्रतीति तथा अनादि अविद्या का सर्वथा ध्वंस करती है । (१०)

सदेकचैतन्यमभिन्नतागतं
स्वशक्तिमायामधिकृत्यलीलया ।
प्रदर्श्य विश्वं पुरुरूपनामकं
विभिन्नताभानमिह प्रतीयते ॥ ११ ॥

Reality is one ; and it is ever and everywhere remaining the same (unchanged). But with the help '*Maya*' its own natural power, and without any active effort it produces an appearance of the universe of plurality upon itself. (11)

भेद-रहित एक चैतन्य ही सत् है। वह अपनी शक्ति, माया से आश्रित होकर, लीलारूप में नाना-रूप-नाम-धारी विश्व को प्रकाशित करके मानव-मन में भेदों की प्रतीति उत्पन्न करता है। (११)

सदेव नित्यं द्वयशून्यचेतनं
विवर्तमानं विसृजेच्चराचरम् ।
स्वयन्तु मूलं हि विकारविच्युतं
विराजते व्याप्य समस्तसंभवम् ॥ १२ ॥

That Reality eternal and one without a a second, creates the universe of animate and inanimate beings as a superimposition on it, but it itself remains the same and unaffected as the true ground emanant through the whole creation. (12)

वह अद्वय एकमात्र सत् चैतन्य ही विवर्त्त रूप से इस चराचर जगत् का सृजन करता है, परन्तु स्वयं विकार-शून्य तथा मूल-कारण होते हुए समस्त सृष्टि को आवृत करके विराजता है। (१२)

यदत्र सृष्टं धरति स्वमीश्वरः
स्वतो हि पूर्णो जगतः समाश्रयः ।
इदन्तु सर्वं प्रभवेच्चिदात्मकं
नचापि किंचिद् भवतु स्वतन्त्रकम् ॥ १३ ॥

The Lord of creation, being perfect by nature sustains the creation in himself as its substratum. Everything of the world (even the whole world itself) is consciousness in essence; there can be nothing without and independent of consciousness. (13)

वह ईश्वर (ब्रह्म) स्वतः ही संपूर्ण तथा समस्त जगत् का एकमात्र आश्रय है। वही अपनी सृष्टि विश्व का धारण एवं पालन करता है। सभी वस्तुएँ चैतन्यात्मक हैं। कोई भी जागतिक द्रव्य स्वतन्त्र नहीं होता। (१३)

यथोर्णजालं पुनरेति कारणम्
तथा हि विश्वं विधृतं यदात्मना ।
विलीयतेऽन्ते तमवाप्य चाश्रयं
विनाश-सृष्टि-स्थितिहेतु-शाश्वतम् ॥ १४ ॥

As the cob-web re-enters its cause the spider and hence disappears from existence, so does the universe created and sustained by consciousness merge and return ultimately into it (conciousness – the only substance) which is both the source and substratum of all and which is really the cause of rise, being and destruction (of all the objects of the universe). (14)

जैसे ऊर्णजाल (मकड़ी का जाल) स्वीय कारण ऊर्णनाभि (मकड़ी) को पुनः प्राप्त होकर उसी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार आत्माश्रित समस्त विश्व भी स्वीय चरम आश्रय तथा सृजन, पालन और विनाश के मूल कारण शाश्वत पदार्थ (ब्रह्म) में अन्त-काल में विलीन हो जाता है। (१४)

परा तु विद्या ह्यपरोक्षरूपका
यतः प्रतीतिः परमार्थतश्चितः ।
विभेदबुद्धिं जनिमृत्युकारणं
समूलघातं प्रणिहन्ति सर्वथा ॥ १५ ॥

The higher form of knowledge being direct and immediate where the only Reality of pure consciousness is realised, destroys for ever the illusory experience of pluralities and dirversities causing all births and deaths, (15)

पराविद्या जो एक तरह का प्रत्यक्ष ज्ञान ही है, चैतन्यरूप ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान कराती है और जन्म तथा मृत्यु की कारणभूत भेद बुद्धि का सर्वथा जड़ से नाश करती है। (१५)

परात्मसाक्षात्कृतिकालपूर्वतः
प्रमाणमेयादियथार्थता मता ।
विचारयोग्या फलसंविधायिका
ततस्तदालोचनमस्ति साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

Until the direct experience and clear realisation of the highest Reality (i.e. universal consciousness) the relative truth and value of empirical knowledge and its means are recognised (by the learned thinkers), so it is proper to consider them here.

जब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता तभी तक लौकिक प्रमेय और प्राणादिकों का याथार्थ्य स्वीकृत होता है और तभी तक वे विचार-योग्य तथा फलदायक (सांसारिक-प्रयोजन-साधक) भी होते हैं। अतः उनकी किंचित् आलोचना करना समुचित है। (१६)

प्रमाणषट्कं व्यवहारवेददम्
अपारमार्थ्यं करणं तदैहिकम् ।
अबाधिता वै स्मरणात्तु चापरा
यथार्थविद्या विदिता भुवि प्रमा ॥ १७ ॥

There are six ways of knowing capable of supplying us enough of practical knowledge. These ways are inferior (to the former) as they can never grasp the ultimate Reality beyond this phenomenal world. The knowledge which is not contradicted and which is other than recollection (i.e. that which is had immediately and for the first time), is taken as a true perception for all worldly purpose. (17)

व्यावहारिक ज्ञानदायक प्रमाण छै होते हैं। ये ऐहिक प्रमाणों के साधक होते हैं, पारमार्थिक तत्त्व-प्रतीति के नहीं। स्मृति-भिन्न और बाधारहित यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं। (१७)

पदार्थसच्चिद्विषयाऽविशेषका
प्रतीतिरग्र्या पुरुषार्थसाधिका ।
विशेषधर्मा व्यवहारिकाऽपरा
ह्यगौणवित्ति र्द्विविधा सतां मता ॥ १८ ॥

The higher from of perceptual knowledge is that which directly apprehends the essence of everything in the form of pure and unqualified consciousness, and hence which is considered as the best knowledge leading the knower to the highest end of life; while the lower form of perception gives us only the qualified and relative knowledge (as a help) for practical life. These are the two kinds of perception (generally recognised). (18)

पदार्थों की चैतन्य सत्ता ही जिसका विषय है, जो विशेष लेश से विमुक्त श्रेष्ठ साक्षात् प्रतीति है वही पुरुषार्थ साधिका होती है। पक्षान्तर में विशेष धर्मयुक्त तथा व्यावहारिक साक्षात् प्रतीति ही अपरा (निकृष्टा) कहलाती है। ये ही दो प्रकार के प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान सज्जनों से स्वीकृत हैं। (१८)

प्रमाणचैतन्यमताश्रिदिन्द्रियै-
रभेदमेतं विषयस्थचेतने ।
विवेदसारो व्यवधानवंचितां
परोक्षभिन्नां विदधाति संविदम् ॥ १६ ॥

When the consciousness reflected by the means of knowledge (*Praman*) going through the senses (*Indriyas*) gets indentified with the consciousness limited by the object, perception as an immediate and direct apprehension occurs and attains the knowledge of the object. (19)

प्रमाण चैतन्य चिद्स्वरूप इन्द्रियों की सहायता से विषय में पहुँच कर, उसके चैतन्य से अभेद को प्राप्त होकर ज्ञानों के सार (प्रधान), अपरोक्ष व व्यवधानरहित साक्षात् प्रत्यय का विधान करता है। (१६)

प्रमा तु चैतन्यमिति प्रमाणजं
स्वरूपतथ्यं विषयस्य चात्मनः ।
प्रकाशधर्मि प्रकृतेर्दधाति वै
स्वतः प्रमाणत्वमया हि संविदः ॥ २० ॥

Knowledge obtained by its appropriate means (*Praman*) is consciousness itself which as illuminating by nature, reveals the true character of the worldly objects and the self. Knowledge is self-evident. (20)

प्रमाणों से उपजात, स्वभाव से ही प्रकाशधर्मी प्रमा भी चैतन्य ही है । वह विषय तथा आत्मा के स्वरूप तथ्य का उद्घाटन करती है । समस्त ज्ञान ही स्वतः प्रमाण होता है । (२०)

यतो हि निद्रादिनिमित्तविभ्रमो
यतो हि काचादिकृताऽप्रमा तथा ।
स्वरूपमावृत्य विदृश्य चान्यथा
भ्रमस्त्वविद्याजनितः परायणः ॥ २१ ॥

False cognition or error grows due to the interference of some other accidental element such as sleep in the case of dream experience and jaundice and other eye-defects in the case of visual illusions. (21)

जैसे निद्रादि दोषों से विभ्रम-बोध होता है, तथा जैसे काचादि आकस्मिक दोष-हेतु अप्रमा (भ्रान्त बुद्धि) होती है वैसे ही सब प्रकार के भ्रम किसी वस्तु का स्वरूप आवृत करके उसे अयथार्थ रूप से दिखलाते हैं। क्योंकि वे स्वभाव से ही अविद्या जात तथा पर-निर्भर होते हैं। वेदान्तवादी यही स्वीकार करते हैं। (२१)

अनात्मबुद्ध्यावलुप्तचेतनो
विभेदपूर्णं तु जगन्निरीक्षते ।
अतः स्वयं नन्यनुभूय खंडितम्
अशेषशोकार्तिभयैर्विमुह्यते ॥ २२ ॥

The ordinary man (in the empirical sense) having his true being concealed by the wrong cognition of the not-self as the self, perceives the world to be full of diversities, and hence falsely considering himself as a separate and distinct individual other than the universal conscoiousness, he gets heavily affected by innumerable sorrows and fears (characteristic of the worldly life). (22)

अनात्मक बुद्धि से आवृत चेतना को धारण कर साधारण जीव इस जगत् को भेदपूर्ण ही देखते हैं। वे स्वयं भी अपने को खण्डित तथा सीमित अनुभव कर अशेष दुःख, क्लेश तथा भयों से विमूढ़ बने रहते हैं। (२२)

यथार्थतथ्यं जगतः सदात्मनः
स्वरूपतत्त्वञ्च तथैव चात्मनः ।
भ्रमान्धदृष्टिः सुतरां स विस्मरन्
स्वतो विमुक्तोऽप्यविवेदकातरः ॥ २३ ॥

Though a person, by nature, is free, but with vision distorted and perverted by error, he does not usually realise the true nature of his self and the ultimate reality of the phenomenal world; and so due to his wrong knowledge he suffers much (on the earth). (23)

सुतरां भ्रमों से अन्ध दृष्टि वाला जीव सदात्मक जगत् का तथा अपनी आत्मा का स्वरूप-तथ्य भूलकर स्वतः विमुक्त होता हुआ भी अज्ञान से कातर होता है। (२३)

अखण्डभूमा बहुवज् जने जने
प्रतीयमाने जड़वत् पदार्थके।
प्रपञ्चसत्त्वे च सदेक ईश्वरः
स वै परात्मा न च कश्चनापरः ॥ २४ ॥

The indivisible infinite one appearing in the form of many men and innumeable other different objects of the world known as material, is falsely taken by ordinary men, to be many. That one Being which is sustaining the whole empirical existence is 'Paratman' i. e. the supreme consciousness—the only Reality and nothing else. (24)

अखण्ड भूमा (अनन्त सत्ता वाला) तथा सनातन एक ईश्वर है जो जन जन में तथा प्रपञ्चात्मक जड़ पदार्थों में भिन्न भिन्न पुरुषों के रूप में प्रतीयमान होता है। परमात्मा वही है, अन्य कोई नहीं। (२४)

न विद्यते कापि विभेदविच्युतिः
समस्तनानाविधवस्तुमूलके ।
यतः समायातमिदं विवर्त्तनं
स्वरूपतस्तत्र पुनर्निमज्जति ॥ २५ ॥

The source of all diversity and plurality is the undiffrentiated unity ; to that from which the entire universe comes into being in the from of *vivarta* (superimposition i. e. an apparent presentation out of itself without any change or prejudice to itself), everything of the universe—nay the whole of it returns ultimately. (25)

समस्त विविध वस्तुओं के मूल में वस्तुतः कोई विभेद या विच्युति नहीं है। उसी (ब्रह्म) से समस्त जगत् विवर्त्त रूपसे निकलता है और स्वरूपतः पुनश्च उसी में निमज्जित हो जाता है। (२५)

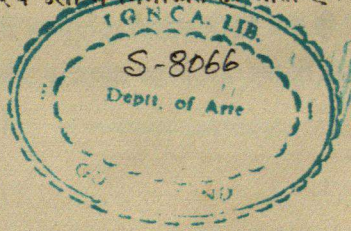
IGNCA. LIB.
S-8066
Deptt. of Arts
SANS
181.482
PUR

महोक्तिजन्यावगतिः परात्मन-
स्त्वगौणसाक्षादपरोक्षधर्मका ।
निवर्तते तत्र हि वेत्तृवेद्यता
विशुद्ध-संवित् सुविराजते परा ॥ २६ ॥

The supreme knowledge attainable by the help of the great sayings (viz. 'That Thou art' and 'I am Brahman' etc.) is of an immediate and perceptual nature where all distinctions of subject and object disappear altogether leaving only pure consciousness-the eternal substance to prevail. (26)

उपनिषद् के महावाक्यों से संजात पारमार्थिक तत्त्वों की समुपलब्धि अगौण तथा साक्षात् होती है । वहाँ ज्ञाता और ज्ञेय का कोई भेद नहीं रहता । केवल विशुद्ध परम चैतन्य ही विराजता है । (२६)

ध्रुवं भवेद् ब्रह्म तु तद्विदो नरो
विशेषमुक्तः खलु लीन आत्मनि।
समानधर्मा परमार्थतस्तथा
परात्मजीवात्मगतैकचेतना ॥ २७ ॥

The person being freed from all limitations and adjuncts (which are not real but only accidental superimposition) and enjoying his true essence, becomes certainly one with Brahman as he realises it. The consciousness limited by the individual personality and the supreme consciousness known as Paramatman or Brahman are essentially identical (qualitatively one). (27)

यह निश्चित ही है कि जो ब्रह्म की उपलब्धि करता है वह अपने स्वरूप आत्मा में सम्पूर्णतः विलीन होकर ब्रह्म ही बन जाता है क्योंकि जीवात्मा और परमात्मा का चैतन्य एक ही है और एक स्वभाव का है। (२७)

विशेषपारं भवसारतत्त्वकं
अरूपनामैव तु सत् प्रभासते ।
चिन्मात्रनित्याविकृतं परार्थत–
इतिस्वरूपाज् जगदैक्यधीः परा ॥ २८ ॥

Reality, transcending all character (and distinctions), being the essence of the whole universe and beyond names and forms, eternally existent as the only substance, i. e. pure consciousness, is never disturbed and affected at all (as there can be nothing within or without besides it). The knowledge of the real identity in apparent differences and of the ultimate unity in empirical multiplicity of the world, is the supreme one. (28)

जगत् का यह सारतत्त्व विशेषातीत तथा नामरूप विहीन केवल सत् ही प्रतिभात होता है । यह चिन्मात्र स्वरूप नित्य व परमार्थतः अविकृत रहता है । एवंविध समस्त जगत् के वास्तविक ऐक्य का बोध ही श्रेष्ठज्ञान कहलाता है । (२८)

त्रिधैवसत्ता प्रतिभासमात्रिका
विभेदसम्बन्धनिमित्तकाऽपरा ।
अपारमार्थ्याऽसदशाश्वती मता
चिमे मृषा सत्प्रतिबाधभाजनम् ॥ २९ ॥

There are three kinds of existences (or three degrees of reality); the one is illusory, the second is conventional, being based on distinctions and relations holding in empirical world. These two kinds of existences are only relative and not being ultimately real, get refuted and contradicted (and even absorbed within) by the third one (i.e. the highest kind). (29)

सत्ता तीन प्रकार की होती हैं:—प्रथम प्रातिभासिक होती है। द्वितीय विभेदयुक्त तथा सम्बन्ध-निमित्त व्यावहारिक सत्ता है। ये दोनों ही अपारमार्थिक व अनित्य सी मानी जाती हैं। अतः ये पारमार्थिक सत्ता से प्रतिबाधित हो जाती हैं। (२९)

तृतीयसत्ता तु सदातनी सती
कदापि केनास्तु न कुत्र बाधिता।
स्वपूर्णसत्ता न परात्ततंत्रका
स्वरूपतश्चित् परमार्थिकाऽव्यया ॥ ३० ॥

The third kind of existence is eternal which can never be contradicted by anything anywhere; that is ever selfcomplete and not dependent on anything else; that being is the undisturbed (indeterminate) consciousness in itself–the ultimate and absolute reality.(30)

तृतीय (पारमार्थिक) सत्ता ही सदातनी और यथार्थ सत्य है। किन्तु यह कभी किसी से प्रतिबाधित नहीं होती। वह स्वयंपूर्ण-सत्ता स्वयं स्वतन्त्र तथा स्वरूपतः अव्यय चिन्मात्र ही है। (३०)

यथेह सुप्तावनुभूतिसम्पदं यथात्र रज्ज्वामहिधर्मकां विदम् ।
निराकरोति व्यवहारिका प्रधीः स्वतो विनाश्य भ्रमवित्तिकारणम् ३१
तथैव सांसारिकवेदवस्तु यद्, विचित्रनानाविधभेददर्शनम् ।
परात्मविद्यैकपरार्थसेविका, चिदेकसत्ता तदसत् प्रबाधते ॥३२॥

As the conventional knowledge of the objects of practical life naturally contradicts and nullifies the stock of dream experiences of sleep and wrong cognition of a snake in a rope etc. along with their cause, so the supreme knowledge being of the same nature with that Absolute consciousness while realising it (the universal self or the ultimate Reality) as its end, contradicts all empirical knowledge of the world of notself, multiplicity and variety. (31), (32)

जैसे सुप्तावस्था की विभिन्न अनुभूतियों को तथा रज्जु में भ्रमात्मक सर्पज्ञान को जागृति-कालीन व्यावहारिक तथा लौकिक यथार्थ ज्ञान स्वभावतः ही उनके कारणों के साथ निराकृत करता है वैसे ही एकमात्र सत तथा चैतन्य स्वरूप परमपुरुषार्थ का साधक परमात्मज्ञान विचित्रतामय नानाविध भेदयुक्त असत् सांसारिक ज्ञानों के विषयों को बाधित करता है। (३१), (३२)

चिदन्यसत्वं परमार्थतस्तदा
न सत्तु, मिथ्या यदिदं चराचरम् ।
भवेदधिष्ठानपरं विवर्तनं
चिदेकसत्त्वं हि समस्त वस्तु तत् ॥ ३३ ॥

Taken other than and independent of consciousness, everything, nay, the whole universe as it appears in ordinary experience, is unreal and false, but as every thing is grounded on that only substratum i.e. the absolute consciousness (and as every appearance is a manifestation of that only Reality), it is in essence consciousness. (33)

अचिद् वस्तु पारमार्थिक रूप से सत् नहीं, अतः यह चराचर जगत् जो अचेतन सा दिखाई देता है, मिथ्या है। यह विवर्त्तन (दृष्ट जगत्) ब्रह्म पर अधिष्ठित होता है । समस्त वस्तु केवल चिदात्मक ही हैं। (३३)

सदातनं ब्रह्म तदेव चाव्ययं
स्वरूपसत्त्वं जगतः समाश्रयः ।
तदात्मकं सर्वमुपेत्य तत्पुन
र्निरंजनं ब्रह्ममयं विपश्चिताम् ॥ ३४ ॥

That Brahman—the Absolute Being is eternal, immutable and the true essence and the only substance and substratum of the universe. Everything having that has its essence and being grounded on and sustained by Brahman pure and absolutely free from all characters & limitations, returns ultimately to Brahman itself (i.e. an appearance of Reality merges in it and disappears as a distinct and separate entity) in the eye of the truly learned. (34)

वह सदातन (नित्य) अव्यय ब्रह्म ही जगत् की स्वरूपसत्ता और आश्रय है । यह तदात्मक (चैतन्य मूलक) तथा लौकिक रूप से प्रतिभात समस्त वस्तु उस ब्रह्म को पुनः प्राप्त होकर निर्विशेष चैतन्य स्वरूप ब्रह्म मय हो जाता है । यथार्थ विद्वान तथा तत्त्वदर्शी व्यक्ति को यही स्पष्ट प्रतीति होती है । (३४)

यथा घटादेर्बहुनामरूपिणो
मृदेव सत्यं विकृतेर्मृदां भुवि ।
विकारमात्रस्य तथा ह्यसारता
यथार्थतथ्यं चिदतो हि वस्तुनः ॥ ३५ ॥

As earth is the essence or reality of all earthen wares having different forms and names like jar, plate etc, which are mere modifications of the same substance (earth) themselves not real, so the essence of everything is consciousness (that is the reality of it, it itself being unreal). (35)

जैसे बहुनाम और बहुस्वरूप से प्रकट घटादि पात्रों में मृत्तिका ही यथार्थ सत्य होता है और समस्त विकार असार व असत्य, वैसे ही केवल चैतन्य मात्र ही वस्तुओं का यथार्थ सत्य होता है। (३५)

यथार्थवेत्ता न चरेत्तु साधनं
कृतं यदेवात्ममनत्व-विच्युतैः ।
कदापि तन्नास्त्वनुबन्धकारणं
स्वतो विमुक्तः सुविवेक एधते ॥ ३६ ॥

The truly learned person does not undergo any purposive practice and whatever is performed by him being completely freed from self-sense can never be the cause of earthly bondage whatsoever to him. So prospers the person with the supreme knowledge, as he himself ever remains really free, by nature. (36).

यथार्थ ज्ञानी कोई कर्मों का अनुष्ठान नहीं करता है। तथापि जो कुछ कर्म उससे किया जाता है वह भी अहंकार बुद्धि तथा ममत्त्व से वंचित उस व्यक्ति का बन्धन-कारक नहीं होता। वह स्वतः विमुक्त विवेकवान व्यक्ति आध्यात्मिक श्रेय-लाभ करता है। (३६)

तदेव सत्यं तु परं तदात्मनः
समस्तविश्वस्य भवेद्धि सूत्रवत् ।
विनाशजन्मस्थितिहेतु शाश्वतं
न विक्रियेत प्रभु शुद्धचेतनम् ॥ ३७ ॥

(That) Brahman is the only and highest truth of all the things which are grounded upon that; that remains holding the entire universe of appearances like a thread in a garland, and does never undergo any change but eternally exists as the ultimate ground of all creation, sustenance and destruction of everything. That Being is the Lord of all and pure consciousness by nature. (37).

वह (ब्रह्म) ही इस तदात्मक सम्पूर्ण विश्व का परम सत्य है तथा इसको (जगत्) को सूत्रवत् धारण करता है। परन्तु समस्त जागतिक वस्तुओं के विनाश स्थिति तथा जन्मों का शाश्वत कारण वह विशुद्ध चैतन्य प्रभु रहते हुए भी कदापि विकार-प्राप्त नहीं होता। (३७)

परात्परं ब्रह्म सनातनं हि सत्
स्वरूपतः सत्परमार्थसत्यता ।
अनन्तमान्दमयं निराकृति
यथार्थमात्रस्य तदेव भासकम् ॥ ३८ ॥

(That) Brahman is higher than the high being and for ever the same; it is the real entity or substance and the sole criterion of all truths. That infinite—blissful and formless One is the illuminating essence of all objects. (38)

परात्पर ब्रह्म सनातन व सत् है । वही सत् वस्तुओं (दृष्ट पदार्थों) की पारमार्थिक सत्यता है । वह अनन्त, आनन्दमय निराकार और समस्त द्रव्यों का प्रकाशन है । (३८)

गुणादतीतं गुणराशिकारणं
विशेषमूलं न विशेषलक्षणम् ।
विचारसारो "न" "न" "नेति" भावनं
तथापि "तत्त्वं" परमार्थदृष्टितः ॥ ३९ ॥

That being the source of all empirical modifications, is itself above them; and being the only ultimate ground of all distinctions and qualifications, it is not determined or touched anyway by them. Though the discriminating study in the form of "Not this", "not that" is a good method of attaining the real Being (by eliminating out all unreal shades or adjuncts), still (on the positive side) there is ultimately an indentity of the subject and the object of cognition i. e. 'You' & That'. (39).

वह समस्त गुणों का कारण किन्तु स्वयं गुणातीत है, विशेषणों का मूल लेकिन स्वयं विशेष द्वारा लक्षित नहीं हैं। 'न न नेति नेति' यह भावना ही श्रेष्ठ विचार है। तथापि परमार्थ दृष्टि से 'त्वत्त्वं' (परमात्मा और जीवात्मा) दोनों की सत्ता एक ही होती है। (३९)

'प्रधानवाच्यं' न हि विश्वकारणं
तथा च नार्हेत् परमाण्वचेतनम् ।
"तदैक्षत" ब्रह्म चिदात्मभासनं
वेदैश्च तर्कैरपि तत् समर्थितम् ॥ ४० ॥

Prakriti the unconscious matter (of Samkhya) is not really the creator of the universe, and so never can the atoms (of Nyaya & Vaisesika) be, as both are equally non-mental and inanimate. The Upanishad states that "that Brahman" (supreme consciousness itself) "desired the manifold manifestation" of itself in and through the appearances of the world. So by both Vedic Testimony and rational arguments it is settled that Brahman is the real author of the universe. (40)

(सांख्यकारों का) प्रधान (स्वभावतः जड़ पदार्थ) इस विश्व का कारण (सृष्टि कर्ता) नहीं है तथा च (नैयायिक और वैशेषिकों का) अचेतन परमाणु भी विश्व का जनक नहीं हो सकता है । इस ब्रह्म ने ही जगत् रूप में आत्म-प्रकाशन की इच्छा की थी । अतः श्रुति तथा तर्क दोनों से ही ब्रह्म इस विश्व का सृष्टा है, यह सिद्धान्त समर्थित होता है । (४०)

तद्ब्रह्मणो जातमिदं समस्तं
ब्रह्मात्मकं तत्र वसेदनित्यम् ।
अन्तं प्रयात्येव ततः स्वरूपम्
अद्वैत-चिन्मात्रमनाद्यनन्तम् ॥ ४१ ॥

This universe as a whole has come out from Brahman; all this impermanent world being Brahman in essence dwells in it, and at the end returns to it to lose its separate being and gets one with Brahman–the ultimate Reality which is only one pure universal consciousness having neither a beginning nor an end. (41)

इस ब्रह्म से यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है। यह ब्रह्मात्मक अनित्य जगत् उस ब्रह्म में ही अवस्थान करता है। अन्त में उसी अद्वैत चिन्मात्र आदि अन्त हीन (समस्त वस्तुओं के) सार तत्त्व (ब्रह्म) में ही यह जगत् पुनः प्रत्यावर्त्तन करता है। (४१)

ब्रह्मैव सत्यं जगतः प्रतिष्ठा
सर्वस्य मूलं परमार्थसत्ता ।
आनन्दमेकं बहुरूप्यरूपं
ज्ञानस्वभावं तमसः परस्तात् ॥ ४२ ॥

Brahman alone is true; that is the sustainer of the universe, the source of everything and the ultimate reality or being of all existences. That is one formless being but capable of assuming infinite forms; that is pure consciousness in its true nature and is beyond all darkness (doubts & ignorance). (42)

ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। वही इस जगत् की प्रतिष्ठा और समस्त पदार्थों की मूल तथा पारमार्थिक सत्ता है। वह सर्वथा एक आनन्द, बहुरूपी (सब प्रकार के रूपों का आश्रय) परन्तु स्वयं रूपातीत, ज्ञान-स्वभाव वह ब्रह्म) अविद्यान्धकार के परे हैं। (४२)

इति अद्वैतामृत सार का प्रथम सर्गभाग

'अद्वैतामृतसारः'

द्वितीयः सर्गभागः

सापेक्षिका सात्मविवर्तसृष्टि-
रस्तित्व-नास्तित्व-विरुद्धधर्मा ।
माया तु मिथ्येति वचः प्रकारो
ब्रह्माधिलाभोदयबाध्यसत्ता ॥ १ ॥

The whole of this universe as a *'vivarta'* of Brahman, depending on the latter is both existent and non-existent (empirically real and transcendentally ideal as Kant would say) i. e. only relatively real but not ultimately so. 'Maya' and unreality are the same phenomenon differing only in words. (1)

आत्मा की विवर्त्त सृष्टि यह ससार सापेक्षिक है (ब्रह्म पर निर्भर है) । यह अस्तित्व और नास्तित्व इत्याकार विरुद्ध धर्म युक्त है । माया तो मिथ्या शब्द का प्रकार भेद है जिसकी सत्ता ब्रह्म ज्ञान के उदय से स्वयं बाधित हो जाती है । (१)

भेदप्रकाशो न हि शाश्वतीयो
मायाविकारो बहुनामरूपः ।
मिथ्याप्रजातो ह्यत एव मिथ्या
कर्मानुबन्धाद् विदधातु दुःखम् ॥ २ ॥

The world of difference is not permanent but merely the creation of 'Maya' (the cosmic nescience) with many names and forms; as it is made of unreal thing viz. 'Maya', it is itself not real but (as an apparent entity) is responsible for presenting innumerable miseries and sufferings according to the acts and dealings of men. (2)

भेद का प्रकाश शाश्वतिक नहीं है। माया के विकार भिन्न भिन्न नाम और रूपयुक्त होते हैं। मिथ्या से उत्पन्न हुए इस संसार की वस्तुएँ भी मिथ्या हैं। तथापि जीवों का कर्मानुबन्धन दुःखों का विधान करता है। (२)

वैषम्यदृष्टि भ्रमवेदमूलम्
खण्डीकरोतीव न खण्डनीयम् ।
अद्वैत-चिन्मात्रसदेकसत्त्वम्
आभासयेत्तच्चयथार्थनाना ॥ ३ ॥

The empirical apprehension of the relative difference caused by wrong knowledge or ignorance seems to divide into many existences the really indivisible one; that One purely conscious and eternal Being is the ground of the appearance of illusory multiplicity. (3)

वैषम्य दृष्टि, जो भ्रान्त ज्ञान मूलक है अखण्डनीय चैतन्य सत्ता को खण्डित रूप से दिखलाती है। अद्वैत शुद्ध चैतन्य मात्र व एक सत्ताशील वही (ब्रह्म ही) असत्य नाना रूपों में संसार में प्रतीयमान होता है। (३)

आवृत्य तत्त्वं ह्यतथा प्रदर्श्य
तस्मिन्नतद्बोध इति प्रकारः ।
अध्यास एव भ्रमवित्तिरूपः
सत्यानृते वै मिथुनीकरोति ॥ ४ ॥

The '*Adhyasa*' (i. e. erroneous cognition) is of the character of taking one thing for another, having the natural power of concealing the true account of an object and showing it otherwise; that adhyasa 'identifies truth with falsehood. (4)

यथार्थ तत्व को आवृत करके अयथार्थ रूप से प्रकट करता हुआ, किसी एक वस्तु में अन्य वस्तु का अनुभव सा भ्रान्त ज्ञान रूप अध्यास ही सत्य एवं असत्यों को एकत्रित करता है। (४)

आरोपरूपेण जगन्न सत्य
मायाविकारोऽथ भदेव मिथ्या।
संसारदृष्ट्या प्रतिभासितं तद्
ब्रह्मात्मतायां न "खपुष्प"तुल्यम् ॥ ५ ॥

The universe in the form of superimposition (or mere appearance), is not true; being the modification of unreal Maya it is itself certainly unreal and false ultimately.

But empirically viewed it is existent and exercising influence on human life and conduct and so being grounded on Brahman and having it as true essence, it is not altogether a non-entity like a 'sky-flower'. (5)

यह जगत आरोप रूप में सत्य नहीं है। माया विकार भी सत्य नहीं परन्तु मिथ्या ही है। सांसारिक दृष्टि से जो कुछ प्रतिभासित होता है उसकी आत्मा भी ब्रह्म ही है अतः वह आकाश-कुसुम सा बिल्कुल असत् भी नहीं है। (५)

वैशिष्ट्यवैचित्र्यमया तु माया
चिन्ता न शक्नोति हि तां विबोद्धुम् ।
लूतेव सृष्टिर्भवती ह्यसत्या
ब्रह्माश्रयत्वान्न पुनस्त्वलीका ॥ ६ ॥

'Maya' is full of differences of both character and presentation; intellect fails to grasp it definitely, the whole creation comes out of the unreal 'Maya' like a spider's web, but yet as supported and sustained by Brahman, it is not absolutely unreal. (6)

वैविध्य व वैचित्र्य मय माया को चिन्ता समझ नहीं सकती है। इस असत्य वस्तु की सृष्टि मकड़ी के जाल सी होती है। फिर भी ब्रह्म के ही उसका आश्रय रहने के कारण वह पूर्णतया अलीक (संपूर्ण असत्य) नहीं है। [६]

नाभावमात्रं ह्यपरं प्रपञ्चम्
आरोप एव प्रतिभात्यखण्डे ।
ब्रह्माश्रये तद् व्यवहारयोग्यं
सर्वं खलु ब्रह्म परार्थमुक्तम् ॥ ७ ॥

This relative, inferior and deceptive world is not merely a negation or nothing, and as a superimposition it comes into being on the absolute ground of the One eternal and indivisible substratum (Brahman). Having Brahman as its soul, the world is the object of empirical treatment, hence the Vedic statement that "everything is surely Brahman" comes to be really true. (7)

यह जगत् ब्रह्म की तुलना में हीन व अपकृष्ट है पर अभाव मात्र नहीं; अखण्ड सत्ता पर यह जगत् आरोपित है अतः ब्रह्म के आश्रय में रहता हुआ यही लोगों के व्यवहार का विषय बनता है। सब कुछ ब्रह्म ही है यह उपनिषद् वाक्य सुसंगत ही है। [७]

माया त्वनादिः परमात्मशक्तिः
सा वै भवेदत्र विकारपात्रम् ।
सृष्टेरुपादानमतो नियुक्ता
मायाश्रितेनेश्वरविश्वकर्त्रा ॥ ८ ॥

'Maya' is the beginningless & infinite grandeur or might of Paramatman (the highest self or supreme consciousness) and is subject to change and modification. So it is used as the material cause of the universe by the Creator (Brahman) who is the Lord and substratum of all creation. (8)

अनादि माया परमात्मा की ही शक्ति है यह विकारों की पात्र (परिवर्तनशील) तथा बहुरूप है। अतः मायाश्रित विश्व-रचयिता ईश्वर द्वारा विश्व सृष्टि के उपादान रूप से वह (माया) नियुक्त की जाती है। (८)

मायैक्यवच्चेऽपि विभिन्नशक्ते-
र्विश्वं समुद्भूतमतो विचित्रम् ।
"मायाभिरिन्द्रः पुरुरूप" आप्ते
श्रुतिप्रयोगेऽर्थयुतं बहुत्वम् ॥ ६ ॥

Though 'Maya' is one, it has multiple power from which the universe of innumerable objects of different qualities, has come into existence, so in the Upanisad "Indra the Lord desired to be many in form and appearance through 'Mayas', the plural number in 'Mayas' is significant only in the sense of infinite powers therein. (9)

माया एक ही है किन्तु उसकी शक्तियां विभिन्न है । इसलिए (उन शक्तियों से प्रादुर्भूत) यह जगत् भी विचित्र तथा बहुरूप है। 'इन्द्र (ईश्वर) ने मायाओं की सहायता से बहुरूप प्राप्त किए थे' इस वेद वाक्य में माया शब्द का बहुवचन मायानिहित शक्तियों के अर्थ में ही सार्थक हैं । (६)

सत्कारणं ब्रह्म विवर्तलीलं
कार्यस्य न स्यादपरात्मसत्ता ।
यन्मायिनः काप्यपरा न माया
संभूय तत्रैव करोति भानम् ॥ १० ॥

The ultimate cause of everything that exists, is Brahman whose effortless play is creation in the form of superimposition upon itself. So the universe thus brought into existence has no independent being but arises on the ground of Brahman like the magical feat or show which has no separate and independent existence apart from the magician where it grows, and by which it is projected out. (10)

वह ब्रह्म, यह समस्त विश्व जिसकी विवर्त्त लीला है, वर्तमान वस्तुओं का कारण है। कार्यों की कोई अन्य निरपेक्ष सत्ता नहीं है। जैसे मायाकार से अलग माया नहीं रह सकती वैसे ही यह समस्त (कार्यरूप) जगत् उसमें (ब्रह्म में) उद्भूत होकर सद्वस्तु सा भासित होता है। (१०)

ब्रह्मैव विश्वस्य निमित्तहेतु-
र्लीलेति सृष्टिर्विहिता हि तेन।
आभासरूपेण विदृश्यमानं
कार्यं भवेद् ब्रह्मविवर्तमात्रम् ॥ ११ ॥

Brahman alone is directly the efficient cause of the universe which is produced by it as a play. Whatever appears and is perceptible is an indirect effect but never a modification of Brahman, brought into being by it while the latter is never affected at all by the creation. (11)

वह ब्रह्म ही जगत का निमित्त कारण है। यह सृष्टि ब्रह्म द्वारा लीला जैसी बनाई जाती है। जो जगत् आपात दृष्टि से दिखाई पड़ता है यह वस्तुतः विवर्त्त मात्ररूप में उसका (ब्रह्म का) ही कार्य है (११)

सत् कारणं स्यादसदेव कार्यम्
आद्यं भवेद् ब्रह्म विवर्तमन्यत् ।
लोके यथा हेम यथार्थतथ्यं
रूपाभिधानैर्बहुभूषणानाम् ॥ १२ ॥

The cause alone is real and effect is unreal. Brahman itself being the only ultimate cause is the former (real) and the world of appearance (being the effect of Brahman) is the latter (unreal) as in worldly experience gold being the essential cause of gold ornaments, is the real substance of them which differ from one another only in forms and names. These as appear are not real. (12)

केवल कारण ही सत् और कार्य असत् है। प्रथम (कारण) ब्रह्म है और दूसरा (कार्य) ब्रह्म का विवर्त्त मात्र (ब्रह्म में कोई विकार उत्पन्न न करती हुई उसकी लीला जैसी सृष्टि) है । परन्तु यह जगत् स्वयं सत्ताशील नहीं। इसे भिन्न भिन्न नाम रूपधारी तथापि एक ही पदार्थ स्वर्ण से निर्मित विभिन्न भूषणादि के समान समझा जा सकता है। (१२)

ज्ञानाद्विमुक्तिः श्रुतिभिः सुगीता
नान्योऽस्ति पन्था अयनाय कोऽपि ।
कर्मानुषंगो भ्रमवेदजातो
मुक्तस्वभावेऽपि चरेत्तु बन्धम् ॥ १३ ॥

The Vedic texts very well say that the final salvation is attainable only by true knowledge and there is no other way than this towards that (salvation). The influences of 'Karma' or conduct of earthly life and the attachments to the earthly objects based on false cognition, bring about the worldly bondage and its feeling to the self which (by nature) is ever free. (13)

ज्ञान से मुक्ति मिलती है। यह वेदों का यथार्थ कथन है। इसे (ज्ञान को) छोड़कर दूसरा कोई रास्ता नहीं है। भ्रान्त ज्ञान से उत्पन्न कर्मानुराग (कर्मफल अभिलाषा) ही मुक्त स्वरूप जीव में बन्धन जनमाता है। (१३)

जीवस्तु नित्यो न कदा च मर्त्यो-
ह्यज्ञानपुञ्जाभिनिरूद्धदृष्टिः ।
तद्भेदबुद्ध्यास्ति भयास्पदं वै
शान्तिं न जानात्यमृतं च नैति ॥ १४ ॥

'Jiva' (self) is eternal and never mortal though its true vision or apprehension of Reality as such is veiled by ignorance (and hence it gets subject to the feeling of mortality); and the individual person having a limited Ego-sense, and through his empirical and hence wrong knowledge of (so-called) multiplicity of the world, becomes subject to fears and knows no rest and peace and attains no immortality. (14)

जीव नित्य है । वह कभी भी मृत्युशील नहीं है परन्तु अपने अज्ञान से उसकी अपनी दृष्टि आच्छन्न (अभिभूत) रहती है । इसलिये भेदबुद्धि के कारण वह भय और नाश प्राप्त करता है, शान्ति को जानता नहीं, अमृत (मृत्यु की अतीत अवस्था) प्राप्त नहीं करता । (१४)

भूत्वापि जीवः प्रकृतेर्विमुक्तो
मायाविमूढोऽविदितात्मसत्त्वः ।
अध्यस्तबुद्धिस्त्वनुभूय बन्धं
"मृत्योः स मृत्यु" पुनरेति भूयः ॥१५॥

Though in reality 'Jiva' (self) is free, but being ordinarily limited and qualified by (the magical influence of) 'Maya' and so not knowing the true character of himself and having a false view of everything, he undergoes the bonds of sufferings and gets deaths after deaths. (15)

जीव स्वभाव से मुक्त होता हुआ भी माया से विमुग्ध होकर अपने स्वरूप नहीं जान पाता । अध्यस्त बुद्धि (जिसकी बुद्धि भ्रांत दृष्टि से प्रेरित होकर एक को दूसरा सा मानती है) साधारण व्यक्ति सांसारिक सुख दुखों के बन्धन अनुभव करते हुए बार बार मृत्यु यातना प्राप्त करते हैं । (१५)

नाल्पे सुखं स्यादपरात्तपारे
भूमैव पूर्णः सुखमित्यनन्तम् ।
सर्वं समाच्छाद्य स राजमान-
आसेवनीयो विदुषां परात्मा ॥ १६ ॥

None of the objects limited by other and hence small and imperfect can get us real happiness or complete satisfaction. True happiness comes out of the realisation of the great, perfect and infinite Being which remains always the same as the ultimate Reality pervading the whole universe, and which is 'Paratman' (the supreme self). (16)

अल्प (क्षुद्र तथा ससीम) वस्तु में जिसका पार (अन्त) दूसरी वस्तुओं से सीमित है, सुख नहीं है। परन्तु सम्पूर्ण भूमा ही अनन्त सुख है। वह समस्त जगत को पूर्णतया आच्छादित करके विराजमान है। अतः विद्वान् व्यक्ति को उस परमात्मा की सेवा करना चाहिये। (१६)

अध्यासमुक्तात्मनि तत्त्वभाति-
स्त्वनात्ममिथ्या-प्रतिपत्तिरूपा ।
यस्यां भवेदात्मनिरूपणेति
सा ब्रह्मविद्या श्रुतयः प्रमाणम् ॥ १७ ॥

The knowledge which brings to light the true nature of object for the person freed from ignorance in the form of that—everything other than and independent of consciousness is unreal, is truly known as 'Brahma-Vidya' i.e. the supreme knowledge where the true being of the self reveals itself (as ever shining) and for which the Upanisads are the authority.(17)

जिसकी आत्मा अध्यास से मुक्त हो उसमें ही 'अनात्म वस्तु मिथ्या है' इसके ज्ञान-रूप तत्त्व की स्फूर्त्ति होती है। जिस ज्ञान में आत्म स्वरूप का यथार्थ निरूपण हो उसे ब्रह्म विद्या कहते हैं। इस विषय में वेद ही प्रमाण हैं। (१७)

चिन्मात्ररूपं त्वविशेषधर्मि
वेतृत्व-वेद्यत्व-विभेदमुक्तम् ।
सर्वप्रकारत्वविवर्जितं सज्
ज्ञानं हि मोक्षो भवबन्धनाशि ॥ १८ ॥

The knowledge of the nature of pure consciousness (like the higher immediate experience of F. H. Bradley), having no particular character, which is free from all distinctions of the knower and the known, which is beyond all kinds of qualifications, becomes one with emancipation itself destroying all the bonds of the world. (18)

शुद्ध चैतन्य स्वरूप, सर्वथा विशेष धर्मवर्जित तथा ज्ञेय-ज्ञानियों के भेद से विमुक्त व समस्त प्रकारताओं से रहित जो सत ज्ञान मात्र है वही संसार बन्धन का नाशक मोक्ष है। (१८)

या ज्ञानमूला परमेति विद्या-
ऽविद्याविनाशं विदधाति सम्यक् ।
यस्यामितायामितमेव सर्वम्
आनन्दसद्ब्रह्म तदत्ति मुक्तः ॥ १६ ॥

That knowledge which is the ground and the ultimate spring of all (empirical) knowledge in particular, which being known and realised everything gets realised and known, and which destroys finally all ignorance and error, as the supreme consciousness—the only eternal substance—the endless bliss and the ultimate Reality or Brahman itself where the liberated dwells for ever. (19)

वही परम विद्या है जो ज्ञान मूलक हो तथा जो अविद्या का पूर्णतया विनाश करती हो। जिस पदार्थ को जानने से ही समस्त वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है उस सद् आनन्द पदार्थ ब्रह्म की ही मुक्त पुरुष सेवा करता है। (१६)

"शोकं तरत्यात्मविदे"व सत्यं
सर्वं भवेदात्म-विवर्तमात्रम् ।
न स्यात् किमप्यन्यदतोऽपि कुत्र
कस्माद् भवेद्भीर्जगदेकचिद्वै ॥ २० ॥

The self-realising person truly escapes sorrows and miseries of the earthly life; and as every existence is simply an appearance of the one Reality i. e. Universal consciousness how and wherefrom can there be any fear ? The true being of all the apparent plurality is that one supreme consciousness (Brahman) –the only unity. (20)

आत्मविद् व्यक्ति समस्त दुःखों से ऊपर रहता है । समस्त वस्तु आत्मा (ब्रह्म) का ही विवर्त्तमात्र है, स्वतन्त्र नहीं । आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है जिससे जीवों को भय हो । क्योंकि यह जगत् भी स्वरूपतः एक ही चैतन्यमात्र है । (२०)

"तत्त्वं ह्यसि" "त्वं दशमोऽसि"-विद्वत्
साक्षादगौणस्त्वपरोक्षवेदः ।
आप्तोक्तिसाध्यो भुवि वेदसारो
वेदान्तसिद्धो भवबन्धनाशी ॥ २१ ॥

That knowledge direct and immediate which is the best of all knowledge in the world,—attainable only by the help of (i. e. living) the Vedic testimony, like the immediate cognition given by the statements such as "That thou art" and "you are the tenth man", is held and established by Vedant to be liberating the person attaining it (the best knowledge) from the earthly bondage. (21)

वेदोक्त 'वह तुम ही हो' तथा 'तुम ही दशम व्यक्ति हो' इत्याकार वाक्य जन्य ज्ञान के समान यह ज्ञान भी साक्षात् तथा अगौण है । आप्त वाक्यों से साध्य वेदान्त ग्राह्य वैसा श्रेष्ठ ज्ञान ही भवबन्धनों का नाशकारक होता है । (२१)

अद्वैतसत्त्वं परमेव सत्यं
जीवो भवेद् ब्रह्म न वै तदन्यः ।
विद्या ह्युपाधिं सुनिरस्य सर्वम्
आत्मस्वरूपं गमयेदभीतिम् ॥ २२ ॥ ६४ ॥

The unitary substance is the highest truth; 'Jiva' (a person) is, in essence Brahman and is never anything else; the true knowledge removing all 'upadhis' (limiting adjuncts) imposed upon the self, reveals the real nature or the true being of the self and hence relieves it from all fears. (22)

अद्वैत सत्ता ही परम सत्य है। जीव ब्रह्म ही है उससे भिन्न नहीं है । यथार्थ विद्या समस्त उपाधियों को संपूर्णतया निरस्त करके भयरहित आत्म स्वरूप का विद्वान् व्यक्ति को अनुभव कराती है। (२२)

मोहो हि बन्धो मरणादिदुःखं
ब्रह्मैकसत्यं प्रतिभासितेषु ।
भेदेष्वभेदन्तु परं विदित्वा
जीवोऽ"तिमृत्यु"ं लभते च मोक्षम् ॥२३॥

Ignorance alone is bondage, death and all other earthly miseries; realising Brahman to be the only essence and reality of all empirical existences or appearances and thoroughly apprehending the unity in multiplicity (or identity in difference), 'Jiva' attains the state of immortality and salvation. (23)

मोह ही बन्धन है, और मरणादि दुःख भी (कारण दृष्टि से) वही है। प्रतिभासित वस्तुओं तथा भेदों में परम अभेद रूप से ब्रह्म ही एक सत्य है। यह जानकर जीव मृत्यु से अतीत मोक्ष की अवस्था को प्राप्त करता है। (२३)

रूपेण नाम्ना बहुजीवभेदः
सोऽज्ञानजोऽयं न तु तात्त्विको वै ।
याथार्थ्यवेदे गतिभेदबुद्धिः
संलीयतेऽद्वैत-विशुद्ध-सत्त्वे ॥ २४ ॥

The distinction of many selves differing only in outer appearance of names and forms (but never in real nature which is the same in all), is the result of ignorance; it is never real (but merely apparent). When the true knowledge of the ultimate Reality arises all illusory knowledge of change and plurality vanishes away. The many existences merge into one Being (of Brahman). (24)

नाम रूप की उपाधियों से ही बहुजीवों का भेद माना जाता है। ऐसा मानना अज्ञान ही है तात्त्विक (यथार्थ) नहीं। वस्तुओं के स्वरूप तत्त्व का ज्ञान होते ही गति तथा भेद-बुद्धि अद्वैतविशुद्ध सत्ता में विलीन हो जाती हैं। (२४)

सांसारिकज्ञानमपारमार्थ्यं
लोके प्रसिद्धं व्यवहारतथ्यम् ।
भेदात्मिका धीः सविशेषचित्रा
तत्त्वप्रकाशे विजहाति सत्त्वम् ॥ २५ ॥

The empirical knowledge is not finally real, but is recognised as relatively so as the condition of practical behaviour in the world; that knowledge based on worldly relations and distinctions, being coloured and qualified by the relative and accidental features (of the objects), loses its reality and completely disappears when the supreme and absolute knowledge arises. (25)

सांसारिक ज्ञान पारमार्थिक नहीं होता है। यह ज्ञान लौकिक व्यवहार का मूल तथ्य है। यह भेदाश्रित विशेषयुक्त तथा विचित्र ज्ञान (आत्मा तथा ब्रह्म का) प्रकाश होते ही अपनी सत्ता को छोड देता है (अर्थात् स्वयं विलुप्त हो जाता है । (२५)

खण्डप्रतीतिं परिहाय सम्यग्
ब्रह्मात्ममूलं समुपैति विज्ञः ।
ज्ञानाधिगम्यं ह्यपवर्गरूपं
चिन्मात्रसच्चं त्वविशेषभूमा ॥ २६ ॥

The truly learned person leaving up altogether all individual feelings and limited consciousness (i. e. partial, superficial and hence illusory experience of the phenomenal self) finally realises Brahman i. e. the true reality and being of the self. That pure consciousness—the state of final salvation, attainable by the absolute and supra-rational knowledge is the one undifferentiated great (the highest substance or ultimate Reality). (26)

विज्ञ व्यक्ति खण्डानुभूति का विशेषतः परित्याग करके आत्मा के मूल (सत्तारूप ब्रह्म) को प्राप्त करता है। ज्ञान द्वारा लभ्य यह चिन्मात्रस्वरूप ही अपवर्ग है, यही निर्विशेष भूमा (वृहत्तम व असीम) है। (२६)

मुक्ति र्न संस्कारफलं कदा स्या-
न्नागन्तकं धर्ममुपैति मुक्तः ।
बुद्धस्वभावो न कदापि बद्धो
ज्ञानाद्धि तत् प्रत्यवबोधमेति ॥ २७ ॥ ६६ ॥

Salvation is never an effect of human performance of any sort (as all activities imply and presuppose duality), the liberated person does not get any new character or qualification either. The self, by its nature, is consciousness and so is never really limited and bound; but only by the supreme (and transcendental) knowledge this can be realised. (27)

मुक्ति कदापि संस्कार कर्म का फल नहीं है और न मुक्ति से जीव का कोई आगन्तुक धर्म ही मिलता है। परन्तु जो बुद्ध स्वभाव तथा सदैव अबद्ध आत्मसत्ता है उसी का मुक्त पुरुषपरा विद्या द्वारा (पारमार्थिक ज्ञान से) प्रत्यवबोध करता है। (२७)

ब्रह्मात्मविश्वैक्य–विवेदरूपं
मोक्षं समाप्यैवमधीत-नित्यम् ।
विद्या यथार्थैव तु वस्तुतन्त्रा
सत्यं विविद्य प्रणिहन्त्यविद्याम् ॥ २८ ॥

The liberation of the form of supreme knowledge that the individual selves, the universe and Brahman all are one in essence, and the true being is to be attained only by the immediate supra-rational or intuitive apprehension (through the meditation on the unfailing testimony of the Vedic texts), though inherent and natural in the self, is the final end i. e. the summum bonum of life. True knowledge being objective (i. e. determined by the object) reveals the true nature of objects and removes all ignorance, doubts and errors about it. (28)

ब्रह्म, आत्मा और जगत इन तीनों में ऐक्य की उपलब्धि ही मोक्ष है। यह ऐक्य सदैव ही वर्तमान है। यथार्थ ज्ञान वस्तु सापेक्ष (विषय द्वारा निरूपित होते हुए) तत्त्व का प्रकाश करके अविद्या का विनाश करता है। (२८)

प्रज्ञावतोऽग्रे हि सदेव भाति
विश्वात्मनि स्वीयपृथक्त्वलोपः ।
सर्वो विभेदः स्वयलुप्यतेऽस्मि
न्नानन्दसत्तामधियातु विद्वान् ॥ २९ ॥

To the person who has attained the supreme knowledge, Being alone shines everywhere; and realising the true essence and reality of the whole universe, in which all individual differences and separate personality-consciousness merge and lose their empirical being, and where all earthly distinctions completely disappear, the learned person (by being one with the ultimate Reality while realising it) enjoys eternal bliss. (29)

यथार्थ ज्ञानी के सामने एकमात्र सत् ही प्रकाशित होता है। विश्व की एकमात्र आत्मा ब्रह्म में वह अपनी पृथकता विलीन कर देता है और साथ ही साथ समस्त भेद भी उसी में विलुप्त कर देता है। तब विद्वान् आनन्दमय सत्ता का ही उपभोग करता रहता है। (२९)

आपातरूपं जगदेवमिथ्या
सत्त्वेन सद् ब्रह्म भवेत्तु सर्वम् ।
नासत्तदैकान्तिकमभ्युपेतं
ब्रह्मैव यस्याश्रयमूलमस्ति ॥ ३० ॥

The universe in the form of appearance is unreal; but everything in essence, is Brahman; so whatever such as individual person (Jiva) and the objects of the world, is grounded on Brahman and has Brahman as its soul, cannot be absolute nothing (30)

आपात रूप से यह जगत् मिथ्या है। प्रकृत सत्ता के विचार से समस्त ही ब्रह्म है। अतः ब्रह्ममात्र मूल आश्रय वाले इस जगत् को एकान्त रूप से असत् नहीं माना जा सकता। (३०)

सर्वं प्रपञ्चं ह्यजडं चिदात्म
विवर्त्तमात्रं परमात्मनस्तत्
मायाविकारोऽपि भवेदनित्यं
ब्रह्मस्वधिष्ठानमतीव नासत् ॥ ३१ ॥

The phenomenal world being conscious in essence and reality, is 'Vivarta' of the supreme consciousness (Brahman). Though it is the modification of 'Maya' and hence impermanent and false, it being sustained by Brahman, is not altogether nothing. (31)

समस्त प्रपञ्च जगत् ही वस्तुतः अजड़ व चैतन्यात्मक है। वह परमात्मा का विवर्त्त मात्र है (परिणाम नहीं)। परन्तु माया का विकार (परिणाम) तथा अनित्य होता हुआ भी नित्यस्वरूप ब्रह्म को अपने आश्रय रूप से स्वीकार करता है। इसलिए वह (जगत भी) संपूर्णतया असत् नहीं है। (३२)

वैचित्र्यलोकोऽस्ति जडाजडेतः
सद्ब्रह्मणः कामविहीनलीला ।
भावे विनाशे जगतस्तदेव
नित्यस्वभावं हि भवेदखण्डम् ॥ ३२ ॥

The world of variety and multiplicity, being a super-imposition on Brahman by itself the only real one, is the outcome of its own sport without any particular want, purpose or active effort. In both existence and destruction of the universe, it (Brahman) remains the same—equally unaffected. (32)

वह वैचित्र्यमय लोक सत् ब्रह्म की काम-विहीन लीला सा विवर्त्त ही है। जगत के भाव तथा उसके विनाश में वह ब्रह्म नित्य स्वभाव (अक्षय) अखण्ड और अपरिवर्तित रहता है। (३२)

मायामतीत्य प्रविराजते तत्
मायाप्रभावं कृतिलेशमुक्तम्।
माय्यप्यमायि प्रणिवृत्तरागं
सर्वान्तमेकं चिरपूर्णसत्त्वम् ॥३३॥

That Being eternally existent, transcending 'Maya' and all its effects and modifications, and remaining as the substratum of 'Maya' it is ever beyond 'Maya' and never gets determined or affected by any influence of the latter. It is the sole end of everything and is a self-perfect substance (in Philosophical sense) i. e. Reality. (33)

माया से अतीत फिर भी माया जिसका प्रभाव है, वही (ब्रह्म) कर्मलेश तथा वासना से सर्वथा विमुक्त रहकर भी समस्त वस्तुओं की एक मात्र सत्ता है। वह (ब्रह्म) मायी (मायाधारी) होते हुए भी अमायी (मायातीत) रहकर सदैव पूर्ण सत्ता रूप में विराजमान है। (३३)

अज्ञानजन्याभिविमूढभावं
देहाद्यनात्मासदनित्यसत्त्वम् ।
अद्वैततत्त्वाधिगतः स विद्वान्
सम्यग् जहात्येव सदात्म-संस्थः ॥३४॥

The really learned person, attaining the unitary principle of the universe of plurality—the only truth, and knowing definitely that bodies and other material objects are really unreal and of temporary existence (i. e. only apparently and relatively real), gets thoroughly relieved from all wrong cognition and states of confusion born of ignorance. (34)

देहादि अनात्मवस्तु असत् व अनित्य है । इस अद्वैत तत्त्व की सम्यक् अनुभूति करके विद्वान सदैव आत्मस्थ रहता हुआ अज्ञान से उत्पन्न भ्रान्त बुद्धि का पूर्णतः परित्याग करता है । (३४)

"सर्वं खलु ब्रह्म" जगच्चजीवो
नान्यत् किमप्यस्तु सदेवलोके।
तत्सारतत्त्वं तु नरो विदित्वा
यायात् सदात्मानमुपाधिशून्यः ॥३५॥

Everything such as the world and the self is certainly Brahman in their ultimate being and nothing other than Brahman can be real; thoroughly knowing this—the highest truth—a man realises his permanent and transcendental self completely free from all accidental characters and adjuncts. (35)

यह जगत् तथा जीव सभी ब्रह्म है। कहीं भी कोई अपर (ब्रह्म भिन्न) वस्तु नहीं रह सकती। इस सार तत्त्व को जानकर जीव उपाधि-शून्य सत् आत्मा की उपलब्धि करता है। (३५)

यस्मात्तु सर्वं प्रभवेद विचित्रम्
भासैव यस्यानुविभाति लोकः ।
उत्पत्तिहेतुस्थिति–लक्ष्यमन्त्यं
सर्वस्य विश्वस्य तदेकसत्त्वम् ॥३६॥

That from which all the empirical distiinctions (i. e. phenomenal diversities) have come into existence, by the natural lustre of which the whole universe is revealed in appearance, and which is the ultimate goal of existences and the source of rise, being and destruction of everyth ing in the world, is the sole essence and reality of the universe. (36)

जिससे यह समस्त विचित्र जगत् उत्पन्न होता है और जिसके आलोक से यह विश्व प्रकाशित होता है तथा जो इस जगत् की उत्पत्ति हेतु तथा स्थिति का अंतिम लक्ष्य है वह सभी एकमात्र सत्ता (ब्रह्म) है । (३६)

सत्तात एकं सदनाद्यनन्तं
सम्भूयमानं निखिलं विधृत्य ।
अन्तः प्रविश्याप्यतियाति लोकान्
आत्मस्वरूपं बहुमेदमूलम् ॥३७॥

That Being which is essentially one and having neither a beginning nor an end supports the whole appearing universe, which is emanant in it and yet wholly remaining untouched (by the universe) transcends it, is consciousness by nature and the only ground of the manifold appearance. (37)

असली सत्ता के रूप में जो सत् अनादि तथा अनन्त एक ही पदार्थ है वह इस निखिल लोक का धारण व पोषण करता है। वह इसमें अन्तः प्रविष्ट होकर भी इस लोक समुदाय से अतीत रहता हुआ स्वरूपतः आत्मा व समस्त (जागतिक) भेदों का मूल है। (३७)

व्याप्यापि विश्वं हि विराजमानं
सर्वस्य मूलं च यथार्थसत्त्वम् ।
ज्योतिः स्वतो ब्रह्म सदेकमात्रं
तस्मादतीतं न भवेत् किमन्यत् ॥३८॥

Pervading the universe, Brahman the only Reality ever remains the same as the source and true essence of everything and is permanently illuminating by nature; nothing else beyond it can exist at all. (38)

विश्व को व्याप्त करके विराजमान, समस्त वस्तुओं का मूल तथा यथार्थ सत्त्व स्वयं ज्योति ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। इससे भिन्न क्या अन्य वस्तु रह सकती है ? (अर्थात् नहीं)। (३८)

आनन्दसद्वै स्वयमेवपूर्णं
संसारसृष्ट्याद्यविकारपात्रम् ।
कर्तृत्वभोक्तृत्व-विवर्जितं तत्
सर्वाश्रयो ब्रह्म जगन्निदानम् ॥३९॥

That Being which is unlimited bliss–the self-complete, highest and only real substance, which is unaffected by the creation etc. of the universe and which remains ever free from all acts of making and enjoying, is Brahman the substratum of everything and the ultimate cause of the universe. (39)

वह (ब्रह्म) सत्, आनन्द तथा स्वयंपूर्ण है । संसार के सृजन पालन और लय से अविकृत तथा कर्तृत्व व भोक्तृत्व से वर्जित सभी का आश्रय वही (ब्रह्म) एकमात्र निदान है । (३९)

तन्निर्विकल्पं परमार्थलक्ष्यं
सर्वस्थमत्येति समस्तलिंगम् ।
सर्वाकृतीनां प्रभवो ह्यमूर्त्तं
सर्वज्ञमानन्दमयं हि शश्वत् ॥४०॥

That substance which is emanant in the universe and yet never determined or limited by it, and which is the final end of the entire creation, lies beyond all characters and distinctive qualifications that Being has no form in particular as it is the source of infinite forms, it is omniscient—blissful and the only eternal entity or Reality. (40)

जीवों का पारमार्थिक लक्ष्य वह निर्विकल्प ब्रह्म समस्त वस्तुओं में रहता हुआ भी समस्त लिंग विशेष से अतीत है। समस्त आकृतियों और रूपों का मूल होने पर भी वह स्वयं अमूर्त, सर्वज्ञ, आनन्दमय व नित्य है। (४०)

अद्वैतनित्यं चरमं हि वेद्यं
सत्यस्य सत्यं परमेव सेव्यम् ।
ज्ञाते तु यस्मिन् विदितं समस्तं
न स्यात् कुतोऽतः पुनरापशेषः ॥४१॥

That permanent substance is the supreme object of knowledge, truth of all truths and the only end worth realisation, which being attained, everything is known and realised; so besides this there can never be left anything more—yet to be known (i.e. unattained). (41)

अद्वैत नित्य ब्रह्म ही जीवों का चरम वेद्य (ज्ञान विषय) है। वह समस्त सत्यों का सत्य तथा परम सेव्य है। उसका ज्ञान होने पर समस्त विशेष वस्तुएँ ज्ञात हो जाती हैं; कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। (४१)

मिथ्याविभूतेः परमार्थतत्त्वम्
अद्वैतमेवास्ति सनातनं सत् ।
ब्रह्मात्मताया ह्यसतो भवस्य
चिन्मात्रसत्त्वंतु तदेक सत्यम् ॥४२॥

The true substance of the false appearance is the one immutable absolute Being. That being the ultimate ground of the unreal world, is of the essence of consciousness—i. e. Brahman and is the only final truth. (42)

सनातन अद्वैत सत् (ब्रह्म) ही इस मिथ्या विभूति का पारमार्थिक तत्त्व है। ब्रह्म के ही अपनी आत्मा होने के कारण इस वैचित्र्यमय असत् संसार का भी एक मात्र सत्य चैतन्य सत् ही है। (४२)

विश्वंसमस्तं हि चिदात्मकं तत्
सत्तात एवाधिवसेत्तथैव ।
वेदान्तवाक्याभ्युदितात्मतत्त्वो
ब्रह्मात्मनोरैक्यमतोऽनुभुंक्ते ॥४३॥

The whole universe having the supreme consciousness as its ultimate essence or soul, is certainly dwelling in it by its being. The person who has realised the true self by the help of the contemplation on the Vedantic texts enjoys for ever the real identity of his self with Brahman (the supreme & pure consciousness. (43)

यह समस्त विश्व ही चिदात्मक है। भार सत्ता एक ही होने के कारण उसी में (ब्रह्म में) यह (विश्व) रहता है । वेदान्त वाक्यों से जिस व्यक्ति में आत्मतत्त्व उदित होता है वही ब्रह्म और आत्मा की एकता का सम्यग् अनुभव करता है । (४३)

ऐक्यं यथार्थं परमात्मना सज्
जीवात्मविश्वेषु सदात्मतायाः ।
माया-विमुक्तः परिपश्यतीति
वेदान्तवाक्यप्रतिपाद्यतत्त्वम् ॥४४॥

The person relieved from 'Maya' perceives and truly realises the identity in essence of the self and the world with 'Paratman' or the highest Being (Brahman), and every existence to be merely its appearance;–he lives this eternal truth established and preached by Vedant. (44)

एक ही सत्ता होने के कारण परमात्मा के साथ जीव तथा विश्व का यथार्थ ऐक्य है इस वेदान्त वाक्य से प्रतिपादित तत्त्व को मायाविमुक्त व्यक्ति देखता है (अनुभव करता है) । (४४)

एकन्तु संसार-विकाशसत्त्वं
भेदा उपाधेरवकल्पिताः स्युः ।
सन्दृश्यमाने बहुनामरूपे
सर्वात्मवेदो लभते सदैक्यम् ॥४५॥

Only that one is the Reality of the world of appearance; the distinctions in the universe (of appearance) are accidental adjuncts imposed on it (Reality or Brahman). The person truly knowing that everything in reality is self or consciousness, realises the eternal unity in all phenomenal varieties of objects of the universe differing only in names and forms. (45)

संसार के विकास का तत्त्व एक है और भेद उसी में उपाधि से कल्पित तथा आरोपित होते हैं। जो समस्त वस्तुओं की मूल सत्ता (आत्मा) को जानता है वह बहुनामरूपयुक्त दृश्यमान इस साधारण संसार में अवस्थित ऐक्य की उपलब्धि करता है। (४५)

ब्रह्म स्वतंत्रं भवमूलसत्य
न न्यायलभ्यं न विचारपात्रम् ।
अद्वैत-नित्यं सदुपाध्यसक्तं
चिन्मात्रसच्चं परमं विशुद्धम् ॥४६॥

Brahman is the only independent Being and the ultimate truth of the deceptive world of appearance; it is not attainable by arguments and is never an object of rational contemplation; it is one without a second, an unchangeable and supreme entity in reality never touched by any adjuncts (of any kind). (46)

इस संसार का मूल सत्य स्वतन्त्र ब्रह्म युक्ति द्वारा लभ्य नहीं है, विचार का भी पात्र नहीं है। वह अद्वैत, नित्य सत् तथा उपाधिमुक्त विशुद्ध चैतन्य मात्र है। (४६)

नास्त्येव कोऽप्यस्य विजातभेदो
न स्यात् सजातीय-विभेदवत्ता ।
नैवात्र खण्डः स्वगतोऽपि भेद-
स्तस्मिन्न वै तत् सहते द्वितीयम् ॥४७॥

There is no difference of any sort in it (Brahman), neither a difference from anything else of the same kind nor a difference from anything else of different kind (as it is only one infinite and perfect entity, it cannot have anything else like it or unlike it, separate from and outside of it to limit itself), nor does it possess any internal distinctions or divisions whatever; it cannot stand any duality at all. (47)

इसमें (ब्रह्म में) कोई विजातीय भेद नहीं है । वह सजातीय भेद भी नहीं रखता । उसमें कोई विभाग या स्वगत भेद भी नहीं है । वह किसी प्रकार से भी किसी दूसरी वस्तु का सहन नहीं करता । (४७)

कालादतीतं ह्यविशेषधर्मि
स्थानाश्रयस्तत्तु चिदात्मकं हि ।
ज्ञात्वा स संयाति तदेतदैक्यम्
आत्मस्वरूपावगतो विमुक्तः ॥४८॥

That Brahman being above time and getting no qualifications or modifications whatsoever of any kind (by nature) and remaining as the ground of space, is all-pervading supreme consciousness in essence; fully knowing (i. e. truly realising) this the liberated man who has attained (i. e. returned to) the true nature of of his self, clearly perceives the real unity in all. (48)

कालातीत, विशेषधर्मविहीन तथा स्थान व दिग्देशों का आश्रय भी वही चिन्मात्र ब्रह्म है। आत्मस्वरूप का ज्ञाता व्यक्ति उस ऐक्य को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। (४८)

सूक्ष्मातिसूक्ष्मो महतो महीयान्
व्याप्याप्यतीत्य प्रभवेत्तु लोकान् ।
सर्वेषु विश्वेष्वपि सत्तया स-
ञ्जात्मा भवेद् ब्रह्म विभुः स नान्यः ॥४६॥

That Being—the finest of all fine and the greatest of all great, lies both pervading and transcending the whole universe. That eternal consciousness living through (though never bound by) the objects of the entire universe by its own unchangeable being, is Brahman the supreme self and the all-perfect entity and no other. There is no real difference between individual self and Brahman (both being essentially the same pure consciousness). (49)

वह सूक्ष्म पदार्थों में अत्यन्त सूक्ष्म तथा महत् से भी अधिकतर महान् है। वह समस्त लोकों को परिव्याप्त तथा अतिक्रान्त करके विराजमान है। समस्त विश्व में उसकी मूलसत्ता के रूप में विराजमान आत्मा ब्रह्म तथा विभू ही हैं, (ब्रह्म भिन्न) अन्य नहीं। (४६)

ज्ञानस्वभावे भवदेकसच्चे
तादात्म्य-संबन्ध-निबद्ध-सर्वम् ।
नैवापि भेदो गुणिनो गुणानां
धर्मान्न धर्मी कथमेव भिन्नः ॥५०॥

To that one Reality which is consciousness, by nature, the entire existence of appearance stands by the relation of essential identity. And so there is no real distinction between the character of a thing and the thing itself (all being ultimately and in reality the same supreme consciousness i. e. Brahman, though merely appearing to be different). (50)

ज्ञान-स्वभाव, विद्यमान तथा एकमात्र सत् पदार्थ में समस्त सांसारिक वस्तुएँ तादात्म्य सम्बन्ध से निबद्ध रहती है । गुण तथा गुणी में कोई भेद नहीं है । धर्म से धर्मी भी कदापि भिन्न नहीं है । (५०)

चैतन्यमिष्टं सदपापविद्धं
ब्रह्म ह्यधिष्ठानमजञ्च शश्वत् ।
तादात्म्यमात्रेण सदात्मवेद
आनन्दनित्यं समवाप्य भुंक्ते ॥५१॥

Brahman—the ever pure consciousness which is essentially free from all fault & impurity, lies beneath everything as its ultimate ground and very being; realising that highest truth in the form of true identity between himself and Brahman, the learned person attains an endless bliss and remains absorbed and merged in it for good, (51)

नित्य तथा अज (अनादि) ब्रह्म ही समस्त जगत का मूल अधिष्ठान है । तादात्म्य बुद्धि द्वारा ही आत्मविद् व्यक्ति नित्य स्वरूप आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त करता है और निरन्तर उसकी उपलब्धि करता है । (५१)

पूर्णं हि सारं जगतो विदित्वा
ब्रह्मैक्यबुद्धिः सत एकसत्त्वम् ।
पूर्णत्वमेति स्वत एव पूर्णः
शान्तस्वभावो भवदाप्तकामः ॥५२॥

Knowing truly that the perfect Being is the only essence of the universe and so the only reality of all existences, the learned man having a clear vision of the identical being of Brahman in all empirical objects and individual selves (usually unknown and concealed due to ignorance) enjoys his true being and remains ever in his real self i. e. Brahman with perfect rest, peace and satisfaction. (52)

ब्रह्मैक्य बुद्धियुक्त व्यक्ति (जिस व्यक्ति को सर्वत्र ब्रह्म है' इत्याकार उपलब्धि होती है) जगत् के पूर्ण सार तथा सत् (वर्तमान) वस्तुओं की एकमात्र सत्ता ब्रह्म को जानकर स्वयं स्वभावतः पूर्ण होते हुए भी ज्ञानानुसार उसके पूर्णत्व की उपलब्धि करके शान्त स्वभाव व आप्तकाम बन जाता है । (५२)

आनन्दसत्त्वं नितरामवाप्य
भेदादतीतं त्वविशेषतत्त्वम् ।
जीवः प्रयात्येव परं हि पारं
संसारबन्धस्य किलातिमृत्युम् ॥५३॥

The person attaining and entering the final state of eternal bliss and the pure Being absolutely free of all accidental character (superimposed only by ignorance), reaches the end of worldly bondage, which is really immortality itself. (53)

आनन्द स्वरूप, भेदातीत तथा निर्विशेष ब्रह्म की सत्ता को सम्यक् जानकर जीव संसार बन्धनों से छूटकर अतिमृत्यु (मरणातीत अवस्था) को प्राप्त होता है । (५३)

मायाविनाशे मरणादिदुःखम्
अज्ञानजन्यं भवबन्धनञ्च ।
विनाश्रयं तद् विलयं प्रयाति
जीवः स्वरूपे प्रविभाति मुक्तः ॥५४॥

With the complete annihilation of 'Maya', all miseries like death and disappointment along with the earthly attachment resulting from ignorance having no support, cease to be, and the person being liberated from them enjoys for ever his true and eternal being (in Brahman the pure consciousness). (54)

माया का विनाश होने पर ही मरणादि दुःख तथा अज्ञानजन्य भवबन्धन भी निराश्रय होकर विलुप्त हो जाते हैं। तब जीव मुक्त होकर अपने स्वरूप में दीप्तिमान रहता है। (५४)

त्यक्त्वा त्वनात्माश्रितबोधनं वै
प्राप्नोति विद्वान् चिदितिस्वरूपम्।
सांसारिकाबन्धनजालमुक्तः
सर्वात्मतां प्राप्य भवेत् प्रशान्तः ॥५५॥

Discarding away altogether all the empirical knowledge based on not-self, the learned person gets (i.e. regains) the pure consciousness which is ever his true being; and as completely freed from the chain of worldly ties (i. e. attachments, desires and all the limiting adjuncts) he gets identified with the universal self (i. e. Brahman) and enjoys undisturbed peace and eternal happiness. (55)

विद्वान व्यक्ति अनात्म वस्तु (जड़ संसार) द्वारा आश्रित अतः भ्रान्त बुद्धि का परित्याग कर चैतन्य ही को अपना स्वरूप जानकर स्वीकार करता है। इस प्रकार वह सांसारिक बन्धनों के जाल से मुक्त होकर सर्वात्मा का ही भाव प्राप्त करके शान्ति का लाभ करता। (५५)

व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य-ममत्वमुक्तो
जीवो भवद् ब्रह्म विवेदलभ्यम् ।
तात्त्विकरूपं परमात्ममात्रं
प्राप्नोति जीवन्निह वा विदेहः ॥५६॥

Getting finally relieved from the sense of individual personality, all the distinctions (i. e. limitations) and ego-consciousness, that person becomes Brahman realisable only by the true knowledge (i. e. the higher from of 'immediate experience'); the self-realising person gets his real being, merges and ever remains in the only pure and universal conscious entity i. e. Brahman (i. e. feels truly one with Brahman) either alive in body on the earth or surviving the bodily death. (96)

तब व्यक्तित्व (खण्ड सत्ता) वैशिष्ट्य तथा ममता आदि से विमुक्त होकर जीव ज्ञानगम्य ब्रह्म ही बन जाता है । तब वह यहाँ (जीवित काल में) अथवा विदेहावस्था में अपने तात्त्विक रूप परमात्मा को प्राप्त करता है (५६)

हित्वा स जीवत्वमनामरूपो
ब्रह्मत्वमेत्येव परं न शून्यः ।
सद्रूपतायाः सुविराजमानो
"भाति" "प्रिय" "अस्ति" तदेव यद्वि ॥५७॥

Leaving up the limited selfhood, he, when liberated, gets positively the same status with Brahman the only ultimate Reality, but never turns to be a non-entity or a complete void. He, as really an eternal being remains for ever truly what he is in essence and reality shining bright as pure bliss itself. (97)

नाम रूप से अतीत आत्मतत्त्व जीवत्व (उपाधि) का त्याग करके सज्ञान भाव से ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। किन्तु स्व शून्य किंवा असत् नही होता है। सत् रूप से चिरकाल तक विराजमान वही रहता है जो दीप्तिगान, प्रिय व सत् है। (५७)

तद् "भिद्यते ग्रन्थि" रतो हि सर्व-
"श्छिन्द्यन्त" एवास्य तु "संशया" वै ।
ब्रह्माधिलाभे व्यवधानलुप्तो
विश्वात्मतामेति नरः स भूमा ॥५८॥

Then all his earthly ties are torn away and all his doubts and confusions disappear finally and the person having realised Brahman does not feel at all any limit or barrier; he being truly 'Bhuma' (i. e. infinitely great and so all-perfect) becomes the universal consciousness again. (98)

तब (ब्रह्म ज्ञान के लाभ के साथ) जीव के हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं और समस्त संशय भिन्न हो जाते हैं। ब्रह्मोपलब्धि द्वारा समस्त व्यवधानों के लुप्त होने के कारण नर विश्वात्मा को पाकर भूमा ही हो जाता है। (५८)

साक्षात्प्राप्ते खलु हि विदुषामात्मतत्त्वे यथार्थे
स्वारूप्येनाप्रमितजगतामैक्यबुद्धिं समेत्य ।
मायाकार्य्यं भ्रमविजनितं द्वैतभेदांश्च हित्वा
ब्रह्मात्मैक्यं चिरमनुभवन् स्वस्थ एवास्ति विद्वान् ॥५९॥

Having directly and immediately attained the supreme knowledge of the true nature of the (transcendental) self (which is the same as Brahman) as revealed to the learned, he firmly develops in him an abiding vision and consciousness of the essential unity in the form of identity of Brahman (universal consciousness) among all the existences (animate and inanimate, mental and non-mental alike) of the universe; leaving away all distinctions and duality which are the modifications and consequences of 'Maya' brought about by ignorance, that learned person realises the eternal and absolute identity of his self with Brahman and becomes one Reality. (59)

विद्वान् व्यक्तियों के योग्य यथार्थ आत्मतत्त्व ज्ञात होते ही स्वारूप्य बोध से वह विद्वान् समस्त जगत में ऐक्य बुद्धि को प्राप्त करता है, और माया के विकार तथा भ्रम-जनित द्वैतबुद्धि व भेदों का परित्याग करके ब्रह्म और आत्मा में चिरकालीन ऐक्य का अनुभव करता हुआ स्वयं स्वस्थ (नित्य व निर्भय) होता है। (५९)

न स्पृष्टः स्यात् पुनरधिगतः कर्मजन्मादिलेशैः
पूर्ण-प्रज्ञश्चिरमपि विभू रागशून्यः प्रशान्तः ।
सद्वाद्-बुद्ध्या समधिनयति स्वात्मदृष्ट्यैक्यसाम्यम्
आनन्दं नन्वमृतमभयं सेवमानः समन्तात् ॥६०॥

Never again does he get bound or limited by his worldly conduct, births, deaths and other states of miseries of the earthly life; he is perfectly wiseand becomes an all-pervading entity (as dismissing away all distinctions & limitations he attains the universal selfhood), being free from all desires and attachments, he is ever in complete peace and perfect being; by the help of that supreme knowledge he directly gets the only unity and essentially the same nature or identity throughout the phenomenal varieties of the universe; and so he certainly enjoys endless bliss absolute fearlessness and immortality or eternal Being. (100)

वह (मुक्त जीव) कर्म तथा जन्मादिओं के लेश से पुनः स्पृष्ट आक्रान्त) नहीं होता है । वह पूर्णप्रज्ञ, सद् विभु (असीम तथा सर्वस्थ) निष्काम तथा प्रशान्त हो जाता है। वह उत्तम और सत् बुद्धि से अपनी आत्मा के दर्शन कर सर्वत्र ऐक्य व साम्य का अनुभव करता हुआ निरन्तर उस अमृत, अभय व आनन्द आत्मा तथा ब्रह्म की सेवा करता (इसकी अवस्था को ही प्राप्त होकर नित्यानन्द का अनुभव करता है)। (६०)

इति द्वितीय-सर्गभागेन सहाद्वैतामृतसारः समाप्तः

S-8066